बिस्रामपुर के संत के बहाने भूदान आंदोलन की पतन गाथा

लक्ष्मी गुप्ता
लखीमपुर–खीरी, उत्तर प्रदेश

हिन्दी में उपन्यास लेखन के अकाल की चिन्ता इधर के दशक में कुछ ज्यादा ही की गई पर उन कारणों की शिनाख्त नहीं की गई कि यह अकाल क्यों हैं? यद्यपि फेहरिश्त देखी जाये तो उपन्यास बराबर लिखे गये। यानी माल की सप्लाई तो की गई पर खरीदार नहीं आये। यह साहित्य का अजीब अकाल है। पर जिस भाषा में श्रीलाल शुक्ल सरीखे उपन्यासकार मौजूद हों, वहां अकाल कैसे आ सकता है। यह ठीक है कि वे दूसरा 'रागदरबारी' नहीं लिख सकते, यह संभव भी नहीं है। महान हस्तियां कभी–कभी पैदा होती हैं। एक लेखक उसे रचकर दूसरों को चुनौती देता है, पर आंतरिक स्तर पर खुद उसके सामने भी बराबर एक बड़ी चुनौती पीछा करती है कि अपनी बनी बनाई मूर्ति को ढहाकर एक नई मूर्ति कैसे रचे? यह समस्या सिर्फ श्रीलाल शुक्ल की नहीं है, बल्कि प्रेमचंद, रेणु सरीखे युगान्तर उपस्थित करने वालें रचनाकारों के सामने भी रही है। क्या प्रेमचंद ने 'गोदान' और रेणू ने 'मैला आँचल' से बनी अपनी मूर्ति को ढहा दिया। अगर श्रीलाल शुक्ल 'राग दरबारी' से बनी अपनी मूर्ति को ढहा नहीं सके तो इसे अचरज के साथ नहीं बल्कि महान कृतियों की नियति के रूप में देखा जाना चाहिए।

श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यास "बिस्रामपुर का संत" को पढ़ते हुए लगता है कि इस समर्थ कथाकार में अपनी मूर्ति को ढहाकर एक नयी मूर्ति गढ़ने की न केवल क्षमता है बल्कि हिन्दी उपन्यास के यथार्थवादी ढांचे को एक नये सिरे से रचने का, उसे जांचने–परखने की अदम्य इच्छाशक्ति भी है। इसलिए कहा जा सकता है कि "बिस्रामपुर का संत" राग दरबारी के आगे का कलि पुरूष है जो सत्ता की राजनीति की कोख से आजादी के बाद पैदा हुआ है। इसलिए इसे रागदरबारी के प्रस्थान का वह चरम बिन्दू कहा जा सकता है, जहां सत्ता की राजनीति का नरक बजबजा रहा है। राजनीतिक–सामाजिक यथार्थ के साथ भूमि सुधार आंदोलन के यथार्थ और उसकी विफलता का जितना प्रमाणिक और तथ्यपूर्ण विश्लेषण इस उपन्यास में दर्ज है, वह शायद उपन्यास में पहली बार अभिव्यक्ति पा रहा है।

पर सरसरी तौर पर 'बिस्रामपुर का संत' विनोबा भावे के भूदान आंदोलन की विफलता का पोस्टमार्टम लग सकता है। पर गहराई में जाने पर लगता है कि यह उपन्यास भारतीय अर्थव्यवस्था में मेरूदण्ड के रूप में समाहित कृषि–जीवन की विडम्बनाओं का एक सिलसिलेवार प्रस्तुत की गई अंतिम रिर्पोट है, जिसमें भारतीय कृषि और किसान जीवन की आहुतियाँ भरी हुई हैं। इसलिए इसे भूदान आंदोलन की ट्रेजडी में रिड्यूज करना उपन्यास के मूल प्रतिपाद्य के प्रति ज्यादती होगी क्योंकि उपन्यास की कथा में निशाने पर भूदान आंदोलन के प्रणेता विनोबा भावे नहीं अपितु जयंती प्रसाद सिंह सरीखे प्रसिद्ध वकील है। जो ताल्लुकेदार घराने से जुड़े होने के साथ–2 स्वाधीनता संग्राम सेनानी जमींदार हैं। जिन्होनें अपनी बंजर धरती को भूदान आंदोलन के यज्ञ में आहुति के रूप में डालकर स्वयं को दूसरे विनोबा भावे के रूप में पेश किया है। इस उपन्यास के केन्द्रीय पात्र जयंती प्रसाद सिंह जीते–जागते प्रतीक पुरूष हैं, जो युवावस्था में भूदान आंदोलन में कूदकर आजादी के बाद सत्ता की राजनीति के भोगी पुरूष बनते हैं। आजादी के बाद अनेक भूदानियों, गांधीवादियों, लोहियाइयों की आजादी के बाद सत्ता की राजनीति में जितनी भागीदारी रही है, वह कमोवेश आज भी वर्तमान है। जयंती प्रसाद

सिंह सरीखे चरित्र इस यथार्थ के एक तीक्ष्ण साक्ष्य हैं, जो भूदानी का जामा पहनकर प्रदेश के राजभवनों का सुख दोनों हाथों से लूट रहे हैं। आज देश की राजनीति का यथार्थ यह है कि कोई गांधीवादी बनकर देश का राष्ट्रपति–प्रधानमंत्री पद की शोभा बढ़ा रहा है, तो कोई लोहियावादी बनकर जातिवादी राजनीति में फंसकर सूबे से लेकर केन्द्रीय सरकार की राजनीति को नियंत्रित करने में मशगूल है। कोई साधारण आदमी की औसत आमदनी को बढ़ाने और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का लालच देकर देश में पूँजीवादी के किले को और मजबूत कर रहा है। इसलिए देश की अर्थव्यवस्था के यथार्थ को समझने के लिए आज मनमोहन सिंह और अमर्त्यसेन के अर्थशास्त्र के सिद्धांतों में फर्क करने की जरूरत है।

जैसे श्रीलाल शुक्ल "बिस्रामपुर का संत" जैसा उपन्यास लिखकर देश के राजनीतिक–आर्थिक यथार्थ पर पाठक की आँख एकाग्र करने पर जोर दे रहे हों। कैसे इस देश की राजनीतिक धाराएं पाखण्ड की शक्ल में आज भी राजनेताओं के संसार में फल–फूल रही हैं, यह देखने की बात है। इसलिए इस उपन्यास में भूदान आंदोलन की विफलता की धज्जियां तो उड़ाई ही गई हैं; मुख्य बात यह भी दिखाई गई है कि कल के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन में किये गये प्रयोग आज की राजनीति में राजनेताओं के लिए किस कदर अमोध अस्त्र बन गये हैं। भूदान आंदोलन, जयंती प्रसाद सिंह सरीखे पाखण्डी राजनेता के लिए किस तरह एक अमोध हथियार बन गया है कि उसे रातोंरात हमारी पत्रकारिता "बिस्रामपुर का संत" घोषित कर डालती है। मानो सत्ता की राजनीति से रिटायर एक अस्सी साल के एक बूढ़े आदमी के लिए भूदान आंदोलन एक ऐसी शक्तिपीठ है जिस पर विराजमान होकर सहज ही संत का खिताब पाया जा सकता है। आखिर भूदान आंदोलन के प्रणेता विनोबा भावे ने देश भर में पदयात्री बनकर, राज–रजवाड़े, ताल्लुकदारों, जमींदारों से जिस तरह का भूमि दान करवाया और सनातन सर्वोदयी होने का गांधी के समान्तर 'संत' का खिताब पाया उसमें गांधी बनाम विनोबा के वैचारिक संघर्ष की टकहराहट भी इस उपन्यास में देखी जा सकती है। "आचार्य विनोबा भावे मामूली संत नहीं हैं, उन्होंने भूदान आंदोलन नाम के हथियार को ईजाद किया है। उसके पहले ही वार में एक तरफ तेलंगाना में साम्यवाद अधमरा होकर रह गया दूसरी तरफ बिहार और उत्तर प्रदेश में गांधीवाद के हाथ पाँव टूट गये।"

श्रीलाल शुक्ल ने पर्त दर पर्त जयंती प्रसाद सिंह जैसे सर्वभोगी, पाखंडी राजनेता के चरित्र के बहाने इस देश के जरा–जीर्ण राजनेताओं के कर्मकाण्ड का कच्चा चिट्ठा पेश किया है। इस तरह वे यथार्थ को खोल कर सिर्फ वस्तु स्थिति ही प्रकट नहीं करते बल्कि व्यवस्था से एक नई बहस की शुरूआत करते हैं। यथा उपन्यास के पात्र विवके के अनुसार – "मेरा विचार है कि मार्क्सवाद और गांधीवाद साथ–साथ रह सकते हैं। वे एक हो सकते हैं। उसका तरीका यही है कि हम दोनों साथ साथ रहने लगें, हमेशा के लिए एक हो जायें।" उपन्यास में जगह–जगह भूदान, सर्वोदय, अन्त्योदय, सहकारी खेती, गांधीवाद और मार्क्सवाद को लेकर बहुत दिलचस्प जिरह है। इस जिरह में लगभग सभी पात्र शामिल हैं। सरकारी खेती की विफलता का नतीजा है कि किसान धीरे–धीरे अपनी खेती–बाड़ी से बेदखल हो गये। उपन्यास रामलोटन का यह वक्तव्य एक भारतीय औसत किसान का पुश्तैनी दर्द है। यथा– "आदमी से मैं नहीं डरता मालिक, न बाघ बघेरा से। पर मुझे कागज से डर लगता है। कागज ने हमारी जमीन कैसे ले ली, मैं नहीं जानता। सारी बात मंत्री जी जानते हैं। वही बतायेंगें।" कागज का यह घर हर भारतीय किसान की मूल विडम्बना है। उपन्यास में किसानों के इस डर को बहुत बरीकी से उपन्यासकार का देहाती किसान खोलता है। ऐसा लगता है कि श्रीलाल शुक्ल के पास किसान जीवन की विडम्बनाओं, गांव की भीतरी राजनीति में पिस्ते साधारण आदमी के अनुभवों की एक विराट गाथा मौजूद है जिसे वे पूरे उपन्यास में जहाँ तहाँ बड़े कौशल के साथ खोलते हैं। ग्रामीण जीवन के पेचीदिगयों को समझने का दावा प्रेमचंद की परम्परा में आज अनेक कथाकार बार–बार करते हैं पर किसी ने कृषि विडम्बनाओं और किसानों के अर्थशास्त्र को समझने की कोशिश नहीं की। श्रीलाल शायद पहली बार इस यथार्थ

से न केवल जूझते हैं बल्कि श्रीलाल शुक्ल उसकी एक बहुत जीवंत परिणति इस उपन्यास में घटित करते हैं कि भारतीय औसत किसान दरअसल एक खेतिहर मजदूर है जो जमीन से बेदखल होकर शहरों में रिक्शा खींच रहा है। जो गांव में पड़े हैं वे खेत नहीं कागज जोततें हैं। जमीन से बेदखल कटे हुए हाथ, जो विरोध में तन कर खड़े नहीं हो पाते।

उपन्यास में चरित्र सृष्टि अद्‌भुत है। ऐसा कहना अत्युक्ति न होगा कि श्रीलाल शुक्ल के पास चरित्रों की सर्जना में महारत हासिल है। ऐसी कला हिन्दी के कम कथाकारों को मय्यसर है, जो चरित्र की पेशगी में इतने सिद्धस्त हों। यह कला उनमें 'राग दरबारी' से लेकर "बिस्रामपुर का संत" तक वर्तमान है। हांलाकि इस उपन्यास में बहुत कम पात्र हैं। पर जितने भी पात्र हैं उनकी अपनी एक खास जगह उपन्यास में मौजूद है। कथा के मुख्य पात्र कुंवर जयंती प्रसाद सिंह के चरित्र की सर्जना में श्रीलाल जितनी तन्मयता के साथ डूबे हैं वह देखते ही बनता है। समकालीन राजनीति के नरक का जितना तीखा साक्षात्कार जयंती प्रसाद सिंह के चेहरे में दिखता है उसे देख कर ऐसा लगता है जैसे कथाकार ने किसी महामहिम को ओ.एस.डी. बनकर लंबे समय तक जीवन यापन किया हो। चरित्र में ऐसा तादात्म्य शायद ही किसी उपन्यास में लक्षित किया गया हो, आम तौर पर राज्यपालों की नियुक्तियां केन्द्रीय सत्ताएं ऐसे खूसट, निर्जीव और राजनीतिक हलके में निर्जीव माने जाने वाले राजपुरूषों को करती हैं, जिनका राजनीतिक जीवन समाप्त प्रायः होता है। कुंवर जयंती प्रसाद सिंह इस मामले में भाग्यशाली हैं कि उन्हें दो बार महामहिम होने का गौरव प्राप्त है। उपन्यास के आरम्भिक हिस्से को पढ़ते हुए अनेक राज्यपालों के चेहरे, चालढाल, उनकी करतूतें झलकने लगती हैं। "सपने में वे यकीनन अस्सी साल के नहीं थे। उम्र के बारे में कुछ भी तय नहीं था। पर शायद वे पच्चीस–छब्बीस साल वाले कुंवर जयंती प्रसाद सिंह थे। आज के सपने में वह उनकी बांहों में नहीं थी; वे खुद उसकी बांहों में थे। पर तय नहीं था कि वह कौन थी। शायद सुन्दरी थी; पर जयश्री भी हो सकती थी। जो भी हो उसकी सुडौल चिकनी देह सिर से पांव तक उसके अंग–अंग को पिघला रही थी। उसके वर्तुल स्तन उसकी छाती में विस्फोटक उष्मा के साथ गड़ रहे थे। जागते में उनकी ढीली–ढाली, परत काया इस समय अचानक धधकते कोयलों में बदल गई थी। एक अनूठी उत्तेजना उन्हें सुन्न करती जा रही थी।"

यह अस्सी साल के बूढ़े आदमी के सपने का जिक्र है जो राजभवन के विशाल कक्ष में अकेले पलंग पर सोया–सुबह–सुबह सहवास का स्वप्न देख रहा है। यद्यपि इन्द्रियां शिथिल और बेकार पड़ चुकी हैं, लेकिन सपने में उसकी क्षतिपूर्ति कर रहा है। मानों राजभवन में इन दिनों बूढ़े राज्यपालों की आत्मरति का अभयारण्य हो। ऐसे भद्र और कुलीन महामहिमों का आंतरिक चित्रण खींच कर श्रीलाल शुक्ल इशारा करते हैं कि हमारे व्यवस्थापालक आज कितने निरर्थक और निर्जीव साबित हो चुके हैं। जयंती प्रसाद सिंह के व्यक्तित्व में आयतन में जैसे यह निरर्थकता कूट–कूट कर भरी पड़ी है। राजभवन के अतःपुर से बाहर वह महामहिम हैं, साहब हैं, एक बड़े सूबे के रखवाले हैं। पर सारा समय वे केन्द्र को खुश करने के लिए तरकीबें ढूँढ़ते हैं। जब राहत मिलती है, तब रात में किसी सुन्दरी या जयश्री के हसीन सपने देखते हैं। अगर देह से काबिल हैं तो फिर ठंडे ठिकानों पर हसीन सुन्दरियों से इश्कबाजी करते हैं। उन्हें जनता की चिंता के बजाय राजभवन के पदो के रंगों की चिंता होती है। यहाँ तक कि अगर उनके पहले कोई हरिजन राज्यपाल था तो सोफे गद्दे तो बदले जाते ही बल्कि राजभवन को गंगाजल से पवित्र किया जाता है।

कुंवर जयंती प्रसाद सिंह हैं तो महामहिम, बिस्रामपुर के तथाकथित संत, एक युवा क्रांतिकारी सर्वोदयी, एक महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, पर दरअसल वे युवा काल से विधुर बने अब अस्सी साल के मनोरोगी हैं, जिन्हें स्त्रियां हीट करती हैं। वर्ना वे हैं– ठंडे जड़, निर्जीव पुरूष जो बिस्रामपुर द्‌वारा पहुंचकर बिस्रमपुर का संत बनना चाहते हैं। पर वहां पहुचने पर उन्हें सबसे ज्यादा चिन्ता अपने कमोड की है। गांव की जनता, वहां के परिजन जायें भाड़ में, वे इतने परजीवी हैं कि तिपाई पर रखे पानी का गिलास भी अपने हाथ

से नहीं उठा सकते। उनके व्यक्तित्व की गांठों को जिस तरह श्रीलाल जी रेशा–रेशा खोलते हैं वह उनकी वर्णन क्षमता की अद्वितीयता का दुर्लभ साक्ष्य है। "देश की बगटुट राजनीति में प्रधानमंत्री के इर्द–गिर्द डोलने–फिरने वाले को दर्जन लोगों मे उनकी गिनती नहीं थी, पर भीतर ही भीतर वे अपने को प्रधानमंत्री का विध्न विनाशक (ट्रबलशूटर) मानने के आदी हो गये थे।"

अगर आज राजनेताओं के बायोडेटा का अध्ययने करे तों उनकी जीवन रेखा शुरू से आखीर तक बलात्कार, खुशामद, झूठ, फरेब, ऐय्यशी, भ्रष्टाचार, लम्पटता में डूबी मिलेगी। जयंती प्रसाद सिंह के आरम्भिक और अंतिम जीवन के ब्यौरे इसके साक्ष्य है। उनमें ये सभी गुण (?) अकूत मात्रा में विद्यमान हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में वे अपने दोस्त की पत्नी जयश्री के न केवल आशिक हो जाते हैं, बल्कि उसका सिग्नल मिलते ही उससे सहवास की तरकीबें ढूँढ़ने लगते हैं, जिसमें वे भलीभांति सफल होते हैं। पर बी.ए. में प्रथम श्रेणी लाने के मंसूबे पर पानी फिर जाता है।

बाइस साल बाद उन्हें जयश्री को एक बार फिर पाने का मौका मिलता है। वे रात को अकेले कमरे में प्रतीक्षा करते हैं कि जयश्री फिर हमबिस्तर होगी। वे जयश्री का हाथ पकड़ते हैं लेकिन वह स्त्री अब वह नहीं थी जो बाइस साल से पहले थी। वह 'गुडनाइट' कहकर दूसरे कमरे में सोने चली जाती है। जयंती प्रसाद सिंह को पहली बार लगता है : 'यह एक बेचैन यात्रा का अंत है। पूर्णविराम फिर भी कितना अधूरा। इतने वर्षों तक रेलवे के किसी शंटिग यार्ड में वे निरन्तर खटर–पटर खट्ट' की गूंजें अनुगूंजे सुनते रहे थे। यह क्या किसी खामोश कब्रिस्तान में प्रेतों का खिलवाड़ भर था'।

जयश्री की मृत्यु के बाद वे बिस्रामपुर में सर्वोदय आंदोलन की कार्यकर्ता सुन्दरी की ओर मुखातिब होते हैं, सुन्दरी जो उनकी उम्र से तीस साल छोटी है, उसे पहली नजर में ही वे पा लेना चाहते हैं। यह वही सुन्दरी है, जो उनके बेटे विवेक की दोस्त है। विवके सुन्दरी से प्रेम करता है और सुन्दरी से विवाह प्रस्ताव भी हो चुका है। सर्वोदय आंदोलन की यह समर्पित कार्यकर्ता भूदान यज्ञ में अपना यौवन और प्रेम दोनों होम कर चुकी है। वह विवाह को अपने मिशन में बाधा समझती है। इस तथ्य को आश्रम के सभी लोग जानते हैं। सिर्फ जयंती प्रसाद सिंह ही नहीं जानना चाहते। वे एक दोपहर सोती सुन्दरी के कमरे में घुसकर पहले प्रणय लीला आरम्भ करते हैं जिसे सुन्दरी ठुकरा देती है, फिर जब देखते हैं कि ऐसे बात नहीं बनेगी तो सुन्दरी से विवाह का प्रस्ताव कर बैठते है, जिसे सुन्दरी अस्वीकार कर देती है।

दरअसल जयंती प्रसाद सिंह प्रेम के पुजारी नहीं थे, वे देह के भोक्ता थे। वे शिक्षाकाल में जयश्री से आकर्षित प्रेमवश नहीं हुए थे, बल्कि उसकी बलिष्ठ और सुडौल आकार से आकर्षित हुए थे। क्योंकि जब जयश्री से उनसे प्रथम मुलाकात होती है तो उसके चुम्बनों का जवाब देने के बजाय वे सहलाने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं, जैसे वे अपनी कामुकता और लम्पटता के 'लार' का क्षरण करना चाहते हो। वे किसी स्त्री से प्रेम कर ही नहीं सकते थे। प्रेम उनके जीवनशास्त्र में था ही नहीं। वे विधुर जीवन के बावजूद, अकेले जीवन खेपते हुए अपने एकमात्र बेटे से प्रेम नहीं कर सकते थे, तो दुनिया में किससे प्रेम करते। स्त्री उनके लिए सुखशैय्या और सहवास के लिए एक सुविधाजनक कमोड भर थी। इसीलिए वे जयश्री से अतृप्त कामनाओं के साथ सुन्दरी की ओर दौड़ते हैं। लिहाजा वे सोती सुन्दरी से प्रणय विनेदन करते हुए सबसे पहले उससे खेलते हैं। लगता है उनकी उंगलियों में स्पर्श का सुख था ही नहीं, केवल एक आदिम हिंसा थी, जिसे वे अपना कामसुख, प्रणय सुख, विवाह सुख मानते थे। उनके लिए सहवास–बलात्कार एक ही सिक्के के दो पहलू थे। वे देह को भोगने के लिए कभी प्रेम करने का नाटक करते थे तो कभी विवाह करने का उत्सर्ग भी। पर उनके लिए प्रेम और विवाह सिर्फ देह को प्राप्त करने का सुगम रास्ता ही था जिसे वे भरी जवानी से लेकर बुढ़ौती तक नहीं छोड़ पाये।

राजनेताओं की इस देह लम्पटता का जितना रसलोलुप वर्णन कथाकार ने जयंती प्रसाद सिंह के बहाने प्रस्तुत किया है, यह अतिशोक्ति

नहीं है बल्कि सच्चाई है। यह सच्चाई आज नई पीढ़ी के राजनेताओं में और ठांठे मार रही है। अगर बलात्कारियों का सर्वेक्षण किया जाये तो गुण्डों–शोहदों–मवालियों के समानान्तर उनकी जो चाह है, वह उनकी राह हैं। जयंती प्रसाद सिंह तो बेचारे हैं जो सुन्दरी की प्रतीक्षा करते हैं, जिस महामहिम से मिलने के लिए मुख्यमंत्री घंटे भर प्रतीक्षा कर सकता है, उसके लिए एक स्त्री 'ना' करने का साहस कैसे कर सकती है। इस लिहाज से श्रीलाल जी ने जयंती प्रसाद सिंह को पुरानी पीढ़ी का एक भूतपूर्व सर्वोदयी होने के नाते जरा शालीन दिखाया है, वर्ना जयंती प्रसाद सिंह सरीखे लोग सत्ता सुख में जितने सिद्धहस्त होते हैं, उसी तरह स्त्री संसार में भी एक सफल खिलाड़ी साबित होते हैं, पर उनका यह सफल खेल बलात्कार ही होता है। श्रीलाल जी ने जयंती प्रसाद सिंह को लोकलाजी बनाया है। वे समाज से डरते थे। वर्ना वे भेद खुलने पर बेतवा नदी के उफानते प्रवाह में आत्महत्या करने का साहस नहीं करते।

जयंती प्रसाद सिंह को आत्महत्या, आत्मवंचना का प्रतिकार नहीं, एक कायर आदमी का जीवन से पलायन है। उसे जब पता चलता है कि सुन्दरी कांड की खबर सुशीला के माध्यम से पुत्र विवके को मिल चुकी है, ऐसे में उसके पास सच को स्वीकार कर कह पाने का साहस नहीं बचता, लिहाजा वे नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं – "एक मंजे हुए हत्यारे की तरह वे ठंडे दिमाग से अपनी हत्या के तरीके के बारे में सोचते रहे थे और कई विकल्पों को खारिज करके उन्होनें अंत में बेतवा की धारा को इस काम के लिए चुना था.... अब जीने का कोई अर्थ नहीं है : उन्होंने सोचा और लगा कि किसी दूसरे के बारे में सोच रहे हैं : मेरा अस्तित्व यहां खत्म हो चुका है। उन्होंने अपने आपसे कहा था और यह भावहीन टिप्पणी किसी अपरिचित के लिए भी हो सकती थी।" पर गौर करने की बात है कि कथाकार ने जयंती प्रसाद सिंह की आत्महत्या के जो कारण दिखाये हैं वे कम से कम जयंती प्रसाद सिंह जैसे गिरे हुए मनुष्यों की दुनिया में सम्भव नहीं है। जो आदमी जीवन भर दंभ की जिंदगी जीता रहा, वह महज एक 'भेद' के खुल जाने मात्र से इतना विचलित हो सकता है कि वह बेतवा की धार में डूबने का अहम फैसला ले ले। भले ही यह भेद उसके पुत्र के जीवन सुख से क्यों न जुड़ा हो। जयंती प्रसाद सिंह के जीवन में पश्चाताप के क्षण तो हैं ही नहीं, जो आज के असली राजनेताओं के सफल होने के गुण हैं। यदि जीवन में पश्चाताप आत्मधिकार के बोध किसी व्यक्ति के मनोलोक में रही है फिर वह आत्महत्या जैसा जीवनघाती फैसला कैसे ले सकता है, इसलिए तमाम मंथन के बावजूद पाठक यह बात स्वीकार नहीं कर पाता कि जयंती प्रसाद सिंह आत्महत्या भी कर सकते हैं। उनकी हत्या तो संभव है जो दुबे महाराज कर सकते थे। पर वह नशे में जयंती प्रसाद सिंह से प्रतिहिंसा के बाबजूद भरी नदी में उन्हें बचाने के लिए कूद पड़ता है, वर्ना जयंती प्रसाद सिंह की लाश भी नहीं मिलती।

लोग कहते हैं कि विनोबा ने अन्न–जल त्यागकर बकायदा अपनी आत्महत्या की। उन्हें कोई बचा नहीं सका। यहां तक कि इन्दिरा गांधी भी नहीं। वे गांधी के आध्यात्मिक पुत्र थे। सर्वोदय के महात्मा और भूदान आंदोलन के मसीहा। पर बिस्रामपुर के इस कलियुगी– संत में ऐसी कौन सी आत्महत्या कामना आ गई जो जीते जी नहीं मिल सकी। गांधी, नेहरू और लोहिया की पीढ़ी को छोड़कर इस देश में कोई राजनेता पैदा नहीं हुआ कि जिनमें आत्म साक्षात्कार की ताकत हो। सेल्फ रिग्रेट या 'कनफेशन' कर पाने की मानसिक बनावट हो। यहां तो सब के सब बिस्रामपुर के संत बन बैठे हैं, पर कोई आत्महत्या नहीं करता।

उपन्यास के अन्य पात्रों में निर्मल भाई का अधःपतन सर्वोदयी कार्यकर्ताओं का मानसिक परावर्तन है जो त्याग का रास्ता छोड़कर सुख और योग के रास्ते पर चल पड़ते हैं। निर्मल भाई सर्वोदय आंदोलन के प्रवक्ता हैं इसलिए विदेश में उनकी मांग बहुत है। पर निर्मल भाई दूसरों को सर्वोदय की सुंघनी सुंघाते–सुंघाते अंत में अपना आत्मोदय करने लगते हैं। सुशीला से विवाह तो पहले ही कर चुकते हैं। अब बारी है धन सम्पदा बटोरने की। लिहाजा इसी भूख में वे सोने की तस्करी करते पकड़े जाते हैं और तिहाड़ जेल में मजा चखने के लिए भेज दिए जाते हैं। निर्मल

भाई का चरित्र यह साबित करने के लिए काफी है कि कल के सर्वोदयी जो विनोबा की तरह लंगोटी पहनकर गुजारा करत थे, समय की मार ने उन्हें हाजी मस्तान बना दिया। एक ओर इन लोगों ने संस्थाओं को खोखला किया, विचारधाराओं की धज्जियां उड़ाई तो दूसरी और नैतिकता, समाजसेवा की आड़ में जनता के साथ धोखा किया। विनोबा के जीवन काल में ही भूदान आंदोलन स्वाहा हो चुका था। बावजूद इसके उपन्यास के दो पात्र विवके और सुन्दरी, पाठक को अंत तक जीवन के शिखरों की ओर ले जाते हैं। सुन्दरी भूदान आंदोलन की एक समर्पित कार्यकर्ता है। वह चाहती तो विवके के साथ, सुशीला की तरह अपना घर बसाकर एक पूर्ण स्त्री का सुखी जीवन जी सकती थी। पर वह ऐसा नहीं कर सकी। वह प्रेम करना और पाना दोनों चाहती थी, पर कर्मपंथ पर चलते रहने से विरत नहीं कर सकी। सुन्दरी का जीवन एक भारतीय स्त्री के समर्पण की महागाथा है। वह क्षेत्र चाहे भूदान आंदोलन का हो या दाम्पत्य जीवन का। वह जहां भी जुड़ती है पूरी निष्ठा से जुड़ती है। सुन्दरी की निष्ठाओं पर सन्देह नहीं किया जा सकता। जयंती प्रसाद सिंह परिहास में ठीक कहते हैं: " तुम औरत नहीं हो, लड़की भी नहीं हो, लकड़ी हो। भूदान यज्ञ की लकड़ी। क्या कहते हैं उसे समिधा।" यह वह समिधा है जिससे जयंती प्रसाद अपना हवन करना चाहते हैं। जिसे वह पूरी तौर पर नकार देती है। जब विवके उसे एक दिन अपने साथ विवाह करने के लिए प्रस्तावित करता है तो उसे भी वह नकार देती है। इस नकार के पीछे उसके कर्तव्यबोध का तर्क तो है ही साथ ही उसके सामने एक मानसिक द्वन्द्व भी है कि विवके के पिता ने जो उसके साथ हरकत की, उसको पाने के लिए विवाह प्रस्ताव किया। इस तथ्य को अंधेरे में रखकर वह विवेक के साथ विवाह करके नैतिक अपराध में शरीक होगी। वह विवके से सीधे नहीं कह पाती है, लेकिन सुशीला को पत्र लिखकर सारी सच्चाई सामने रखती है। इस सच्चाई को सामने रखकर दरअसल वह अपनी नैतिकता को प्रकट करती है।

चूंकि सुन्दरी एक अत्यंत संवेदनशील और बौद्धिक स्त्री है, इसलिए नैतिकता हमेशा उसके आड़े आती है। वह इतनी नैतिक है कि अपनी आंखों के सामने हिरन को मरता देखकर सिहर जाती है और इस अमानवीय कृत्य के लिए जयंती प्रसाद सिंह की भर्त्सना करती है। उसकी मृत्यु में भूदान आंदोलन की ट्रेजडी समाहित है। कहना चाहिए कि सुन्दरी आज के गिरे हुए समाज में नैतिकता और कर्तव्यनिष्ठा की जलती हुई दीपशिखा है, जो स्वय को बुझाकर औरों को रोशन करती है। सुन्दरी के बरबस विवके बौद्धिक वर्ग का प्रतिनिधि है। वह पिता से मन ही मन घृणा करता है पर उनका विरोध नहीं कर पाता। जबकि उसके पिता की उस पर टिप्पणी है : "मेरा बेटा वामपंथी है। उसकी जगह वह वाममार्गी होता तो मुझे उतनी उलझन न होती" वामपंथियों के बारे में यह धारणा हमेशा उन नेताओं को ज्यादातर रही है जो लूटपाट की जिंदगी जीने के अभ्यस्त हैं लेकिन विवेक हमारे बौद्धिक समाज का सच्चा प्रतिनिधि है जिसे बौद्धिक विकास के साथ हमेशा समाज, देश की चिंताएं सताये रखती हैं। वह परिवर्तनवादी है, पर प्रतिक्रियावादी नहीं। इसीलिए वह अपने पिता की सुविधाभोगी जिंदगी को छोड़कर संघर्षशील जीवन का रास्ता चुनता है। इस उपन्यास में सुन्दरी, सुशीला, निर्मल भाई से की गई दिलचस्प बहसें उसकी बौद्धिक सम्पदा को खोलती हैं। वैचारिक दृष्टि से यह उपन्यास का सबसे पठनीय हिस्सा है। वह अपने पिता से राजनीतिज्ञों की निर्मम आलोचना करते हुए कहता है : बाबूजी इन राजनीतिक जंतुओं में सचमुच ही अगर कोई ऐसा दिखे जिसकी हैसियत कुत्ते से बेहतर हो तो मुझे बताइयेगा। देखना चाहूँगा कि वह कैसा दिखता है" यहीं नहीं वह पिता के राज्यपाल पद से रिटायर होने के बाद बिस्रामपुर जाने के उनके फैसले का विरोध करता है। वह मानता है कि भूदान आंदोलन को जिलाये रखना आज मात्र एक ढकोसला है।

उसका कहना है कि "जिस देश में सुई की नोंक भर जमीन के लिए महाभारत का युद्ध हुआ हो वहां सद्भाव और हृदय परिर्वतन की बात भावुकता भर है। सामूहिक हृदय परिवर्तन इतनी आसानी से नहीं होते। उसके लिए रूस जैसी व्यापक क्रांति की जरूरत होती है। यानी वह भूदान आंदोलन की विफलता पर कायम रहता है और इस आंदोलन को दुधारी तलवार बताता है।

वह कहता है : "मुझे लगता है कि भूदान जैसे दाता और दान ग्रहीता आंदोलन ने किसान की इस गांधीवादी अवधारणा पर वैसी ही चोट की है जैसी कि साम्यवादी संघर्ष पर।"

इन बहसों से यह प्रकट होता है कि हिन्दुस्तान का वामपंथी बुद्धिजीवी भूदान आंदोलन को गांधीवादी को महज एक कर्मकाण्ड ही मानता है। विवके का अर्थशास्त्र यही सोचता है। मैं नहीं जानता कि भारत के अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन भूदान आंदोलन के बारे में क्या विचार रखते हैं। आखिर भूदान आंदोलन भी तो गरीबों के लिए भूमि वितरण का ही अर्थशास्त्र है।

विवके, सुन्दरी से प्रेम करता है। पर वह अपने पिता की तरह छल भरा प्रस्ताव नहीं रखता। बल्कि सुन्दरी के सामने विवाह प्रस्ताव रखते हुए वह बेबाक कहता हैं, 'देखो सुन्दरी, हम दोनों के सामने बहुत काम हैं। हम बहुत व्यस्त व्यक्ति हैं, एक दूसरे के बारे में सोचकर हमें वक्त नहीं गंवाना चाहिए.... इससे अच्छा है कि हम लोग शादी कर लें उसके बाद निश्चिंत होकर अपने कर्मक्षेत्र में जुट जायें।"

आज के दौर में प्रेम और विवाह के बारे में यह एक बौद्धिक व्यक्ति का बयान है, जो गैर रोमेंटिक तो है पर एंटीरोमेंटिक नहीं। वह प्रेम के बौद्धिक धरातल पर जीता है। जब सुन्दरी उसके प्रस्ताव का कोई जवाब नहीं देती तब भी वह उसे विवश नहीं करता। उसके लिए विवाह दो जनों के बीच की जिन्दगी को शेयर करने का एक ढंग है। बस कुछ नहीं। उसके सामने जब सुशीला सुन्दरी से विवशता की बात करती है और उससे अपनी सहानुभूति प्रकट करती है, उस समय विवके का वक्तव्य उसकी जिंदगी के अर्थ और उसके नजरिये को उद्घाटित करता है : तुम ट्रेजडी का अर्थ नहीं समझती, तभी ऐसा कह रही हो, ट्रेजडी एक भयावह चीज है। किसी से प्रेम हो और उससे शादी न हो पाये, यह ट्रेजडी नहीं है। आज की सामाजिक व्यवस्था में जिंदगी के हजार क्लेशों में यह एक क्लेश भर है। ज्यादा से ज्यादा कुछ लम्बे दौर का न्यूसेंस है ट्रेजडी से लेकर अब मुझसे कभी ऐसी हल्की बात मत करना।"

प्रेम और विवाह के बारे में यह वक्तव्य साबित करता है कि युवा पीढ़ी का प्रेम और विवाह के बारे में आज वही मध्कालीन नजरिया नहीं है जो प्रेम की विफलता को ही जीवन की विफलता मानने लगे हैं। कोई जरूरी नहीं कि जो प्रेम दुनिया में सफल हो जाये, वह जीवन में भी सफल हो। आज मनुष्य की ट्रेजडी इतनी सीमित नहीं रह गई है। विवके के ये विचार इस उपन्यास की एक अनन्य उपलब्धि है।

जहां तक इस उपन्यास में औपन्यासिक कला का सवाल है; कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल इस कला के आज एक शिखर पुरूष हैं। उनके इस उपन्यास में कथा को कहने का एक नया ढंग है। कथा का आरंभ जंयती प्रसाद सिंह के राजभवन–जीवन से होता है। वे सुन्दरी के देह भोग का स्वप्न देख रहे हैं कि तभी उन्हें सुन्दरी की मृत्यु की सूचना मिलती है। देहभोग के स्वप्न के साथ प्रिय की मृत्यु की सूचना। यह ही उपन्यास के प्रवाह को आगे बढ़ाती है। फ्लैश बैक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में जंयती प्रसाद सिंह के वर्तमान और अतीत की भिड़ंत इतनी दिलचस्प और पठनीय है जैसे लगता है जंयती प्रसाद खुद अपने जीवन का कोई नाटक देख रहे हों। वह वर्तमान में रहते हुए भी अतीत में जीते हैं। जब अतीत टूटता है तब वे वर्तमान से परास्त हो जाते हैं। पूरे उपन्यास में अतीत और वर्तमान की यह लुकाछिपी कहीं भी कथा प्रवाह को तोड़ती नहीं, बल्कि शुरू से आखीर तक पाठक को बांधे रहती है। पूरे उपन्यास के कथ्य पर कथाकार की पकड़ इतनी नायाब है कि उससे कोई जरूरी प्रसंग छूट नहीं पाता। इसकी पठनीयता की एक खास बात लेखक की अद्वितीय वर्णन क्षमता में छिपी है। लेखक के पास न केवल राजनीतिक जीवन के अकूत अनुभव मौजूद हैं बल्कि पूरे भूदान आंदोलन का इतिहास सामने नाचता दिखाई पड़ता है।

इसलिए इस उपन्यास में वैचारिक संघर्ष का आलोड़न–विलोड़न तो है ही, बल्कि इसमें रसमय गहरा कथा रस भी है। एक बूढ़े राजनीतिक की जीवन कथा को इतने रसमय ढंग

से चित्रित किया गया है कि पाठक पहली बार भूदान आंदोलन के बूढ़े सर्वोदयियों को इतने निकट से जान परख पाता है। श्रीलाल जी के पास कथारस को जीवंत बनाने के लिए जो सबसे जरूरी उपकरण है–वह है उनकी व्यंग्यपूर्ण शैली जिसके लिए वे 'राग दरबारी' से ही विख्यात हैं। अगर उनके पास व्यंग्य का यह लहजा और उतनी ही व्यंग्यपूर्ण भाषा की थाती न होती तो शायद 'बिस्रामपुर का संत' इस कदर व्यंग्य और उपहास का पात्र न बन पाता। फलतः जो बात वे पैदा करना चाहता है, वह इस उपन्यास से दूर छिटक जाती। उपन्यास में कई ऐसे स्थल हैं, जहां व्यंग्यपूर्ण भाषा के नायाब प्रयोगों से कथ्य इतना बेधक और धारदाद बन गया है कि वह देखते ही बनता है। कुछ उदाहण सामने हैं– "सपने का खुमार वर्तमान के साम्राज्य में विलीन हो गया।"

"वामपोंथी के बजाय अगर वह वाममार्गी हो गया होता को मुझे ज्यादा संतोष होता।"

"यह उनके जीवन की पहली और आखिरी काव्य रचना थी, पर उसका ऐसा ऊंचा पारिश्रमिक शायद ही किसी विश्व कवि को मिला हों"।

"बाथरूम में बैठे हुए उन्होनें सोचा था : कमोड ठीक है। अब उन्हें लगा कमोड को छोड़कर सब कुछ गलत है"

व्यंग्यपूर्ण भाषा के साथ ऐन्द्रिक बिम्बों वाली भाषा की सघनता इस कदर रची–बसी है कि पूरे दृश्य को शब्दों से जगमगा देती है। ब्लाउज के नीचे उसके उरोज गहरी नींद की नियमित सांास के साथ हलकी लहरों पर चलती हुई नाव की तरह उठ रहे थे, गिर रहे थे।"

भाषा का ऐसा परदर्शी संगमरमरी चेहरा श्रीलाल जी ने अपने जीवनानुभव और लेखकीय संघर्ष की उष्मा से प्राप्त की है। किसी भी लेखक के ऐसी भाषा पाकर अपने ऊपर नाज हो सकता है। पर श्रीलाल स्वंय पर रीझने के बजाय अपने पूरे लेखन के दौर में स्वयं पर हंसते रहे हैं। स्वंय पर लगातार जोरदार ढंग से हंसना ही उनकी कामयाबी है।

क्योंकि एक रचनाकार का अपने ऊपर हंसना ही उस खरी रचनात्मकता की ओर लौटना है, जहां श्रीलाल जी बार–बार लौटते हैं। वर्ना 'राग दरबारी' के आगे 'बिस्रामपुर का संत' लिख पाते।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- सूनी घाटी का सूरज–श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- बिस्रामपुर का संत –श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- मकान – श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- आदमी का जहर – श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- अज्ञातवास– श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- राग–दरबारी – श्री लाल शुक्ल – राजकमल प्रकाशन
- राग–दरबारी कृति से साक्षात्कार–डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र– संजय प्रकाशनए दिल्ली
- हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र – डॉ. सुजाता – साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
- फ्रायड मनोविश्लेषण –सिंगमड फ्रायड – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

- संस्कृत सूक्तियों और लोकोक्तियों – डॉ. वेदव्रत –शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

Copyright © 2014. Luxmi Gupta. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.